वैदिक काल में भू–जलविज्ञान एवं जल गुणवत्ता

समीर व्यास

केन्द्रीय मृदा एवं सामाग्री अनुसंधानशाला, नई दिल्ली
ई–मेल : Samyog78@yahoo.com

सारांश

प्राचीन भारतीय सभ्यता में जल ही जीवन है का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। वैदिक साहित्य में जल स्रोतों, जल के महत्व, उसकी गुणवत्ता एवं संरक्षण की बात बारबार की गई है। जल के औषधीय गुणों की चर्चा आयुर्वेद (जो एक वेदांग है) के अतिरिक्त ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में भी मिलती है। यह माना गया है कि हमारा शरीर पंच महाभूतों अर्थात पंचतत्वों से बना है जिसमें एक तत्व जल भी है।

भारत में भू–जल विज्ञान का विकास लगभग 5000 साल से भी अधिक पुराना है। वैदिक साहित्य में इसके प्रमाण मौजूद हैं। ये प्रमाण श्लोकों सूत्रों तथा स्तुतियों के रूप में विभिन्न देवताओं (इन्द्र, वायु, अग्नि इत्यादि) की उपासना के अनुक्रम में उन्हें सम्बोधित हैं। इन श्लोकों, सूत्रों तथा स्तुतियों से जाहिर होता है कि वैदिक काल में भू–जल विज्ञान से जुड़ी खोजें विज्ञान सम्मत थीं। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में पानी की गुणवत्ता के बारे में भी उल्लेख है। आरंभिक बुद्धकाल या उसके थोड़े पहले रचित चरक संहिता में भी भू–जल की गुणवत्ता की चर्चा की गई है। आयुर्वेद से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों में जल की गुणवत्ता और जल में मौजूद घटकों का उल्लेख निर्विवादित रूप से प्रमाणित करता है कि प्राचीन भारत में यह विज्ञान विद्यमान था।

कृषि हेतु सिंचाई की व्यवस्था विकसित की गई। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने लिखा है कि मुख्य नाले और उसकी शाखाओं में जल के समान वितरण को निश्चित करने व नदी और कुओं के निरीक्षण के लिए राजा द्वारा अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

आर्यभट्ट प्रथम के शिष्य वराहमिहिर (ईसा से 587–505 साल पहले कुछ लोग इसे बाद का भी मानते हैं) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वृहत्संहिता में भू–जल की खोज और उसके उपयोग के बारे में 125 सूत्र प्रस्तुत किये हैं। वृहत्संहिता को पढ़ने से पता चलता है कि उस काल में भू–जल की खोज और धरती की विभिन्न गहराइयों में उसकी मौजूदगी के बारे में जानकारी जीवों के आवास मिट्टी चट्टानों दीपक की वाल्मी पौधों की कुछ खास प्रजाजियों तथा उनके लक्षणें के आधार पर की जाती थी। वृहत्संहिता में वर्णित लक्षणों के आधार पर करीब 600 मीटर की गहराई तक उपस्थित भूजल भंडारों की खोज संभव थी। यह सर्वमान्य ज्ञात तथ्य है कि शुष्क और अर्ध शुष्क जलवायु वाले इलाकों में, अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा धरती के गर्भ में छुपी नमी और पानी जीवों तथा चट्टानों पर अधिक निर्णायक असर डालती है। पानी के इस निर्णायक असर से चट्टानों में कतिपय रासायनिक परिवर्तन होते हैं और ये परिवर्तन विभिन्न लक्षणों के रूप में धरती पर प्रगट होते हैं। उन लक्षणों के स्वरूपों तथा उन्हें पैदा करने वाले घटकों के वैज्ञानिक आधार को समझ कर पानी की मौजूदगी की सटीक भविष्यवाणी करना या उनकी मौजूदगी को सूत्रों के रूप में व्यक्त कर देना, निष्चय वराहमिहिर की अद्भुत उपलब्धि है।

वृहत्संहिता के 54वें अध्याय में जमीन के नीचे के पानी का पता बताने वाले वृक्षों, जीवों, भूमि और चट्टानों से जुड़े विशेष संकेतकों और कुआ खोदने की विधि का वर्णन किया है।

उल्लेखनीय है कि प्रकृति में ताँबे, सीसे, जस्ते, सोने इत्यादि धातुओं के गहराई पर मिलने वाले भूमिगत खनिज भंडारों की उपस्थिति को दर्शाने वाले प्राकृतिक संकेतक इन खनिज भंडारों के ऊपर अर्थात् पृथ्वी की सतह पर मिलते हैं। ये संकेतक ताँबे, सीसे, जस्ते, सोने इत्यादि धातुओं के भंडारों की खोज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी तरह अनेक फूलों और वनस्पतियों में धरती के नीचे के खनिज भंडारों के संकेतक पाये जाते हैं। इन प्राकृतिक उदाहरणों से लगता है कि इसी तरह कतिपय वनस्पतियाँ, चट्टानें और जीव–जन्तु मूल रूप से भूजल की उपरोक्त शिराओं की उपस्थिति के सूचक की भूमिका निभाते हों इसलिये यह अनुमान लगाना उचित एवं तर्कयुक्त होगा कि वरामिहिर ने भूमिगत पानी के प्राकृतिक संकेतकों को पहचान लिया होगा और उन संकेतकों को जमीन के नीचे पानी की भविष्यवाणी करने में प्रयुक्त किया होगा।

प्रकृति में चन्द ऐसे वृक्ष मौजूद हैं जो अपने नीचे की जमीन में पानी की मौजूदगी की जानकारी देते हैं। प्रोसोपिस स्पाइसिजेरा, अकेसिया अरेबिका और साल्वेडोरा ओलीवायडिस नामक वृक्षों की जड़ें मरुस्थलीय परिस्थितियों में भी पानी तक पहुँचाने में सक्षम होती हैं। इसी तरह जामुन और टरमिनेलिया स्पाइसिजेरा के वृक्ष सामान्यतः नम और घाटी के निचले स्थानों में ही पाये जाते हैं। इसी तरह बलुआ, ग्रिटी तथा पीली, धूसर, किस्म की मिट्टीयों के नीचे अकसर पानी मिलता है। इकोलाजी (आधुनिक विज्ञान) और वराहमिहिर के परम्परागत विज्ञान के बीच सम्बन्ध प्रतीत होता है। इसलिये वैज्ञानिक आधार पर दोनों विज्ञानों के बीच समझ विकसित करने की आवश्यकता है।

संक्षेप में आचार्य वराहमिहिर के अनुसार भूमिगत जल धरती के नीचे शिराओं के रूप में बहता है। आधुनिक भू–जल विज्ञान की मान्यताओं के अनुसार भू–जल का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना जाना, चट्टान के अन्दर के दोनों स्थानों के बीच के दबाव के अन्तर (presure) के अन्तर अर्थात् वाटर टेबिल के भूमिगत ढाल के कारण होता है। आधुनिक विज्ञान बताता है कि समान गुणधर्म वाली रेत को छोड़कर सभी किस्म की चट्टानों में पानी का प्रवाह कहीं कम तो कही अधिक होता है। संभव है वराहमिहिर ने चट्टान के अन्दर पानी के अधिक प्रवाह को शिराओं का नाम दिया हो।

प्रस्तुत शोध पत्र में हमारी प्राचीन वैदिक काल में वर्णित जानकारियों एवं आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया गया हे.इस तरह हम भू–जल विज्ञान एवं जल गुणवत्ता संबंधित समस्याओ को अच्छे तरीके से समझ कर सुलझा सकते हे। आधुनिक विज्ञान एवं वराहमिहिर के परम्परागत विज्ञान के बीच सम्बन्ध प्रतीत होता है। इसलिये वैज्ञानिक आधार पर दोनों विज्ञानों के बीच समझ विकसित करने की आवश्यकता है।

Abstract

In ancient Indian civilization, the importance of water for life was very well established. The issues related to different sources of water, its quality and conservation have been repeatedly talked about in Vedic literature. In addition to Ayurveda (which is a Vedanga), the medicinal properties of water are also found in the Rigveda and Atharva Veda. It is believed that our body is made up of PanchMahabhutas i.e. Panchatattva, which also has an element of water.

The development of ground hydrology in India is more than 5000 years old. There is evidence of this in Vedic literature. These evidences address them in the sequence of worship of various gods (Indra, Vayu, Agni, etc.) in the form of Shlokas, Sutras and Stuti.

It is evident from these verses, sutras and the praises that the discoveries related to ground hydrology in Vedic period were based on scientific facts. In addition, the Atharvaveda also mentions about the quality of water. The quality of ground water is also discussed in the CharakaSamhita composed in the early Buddha period or a little earlier. The mention of the quality of water and the components present in water in various texts related to Ayurveda indicated that this science existed in ancient India.

The Irrigation system wasalso developed for agriculture. The Greek traveler Megasthenes has written that officers were appointed by the king to ensure equal distribution of water in the main stream and its branches and to inspect the river and wells.

A disciple of Aryabhata I, Varahamihira (587–505 years before Christ,) has presented 125 sutras about the discovery and use of ground water in his famous text Vrhatsamhita. The reading of Vrhatamshita shows that the discovery of ground water and its presence in the various depths of the earth during that period, was studied based on the presence of different types of habitat of the organisms, types of soil, rocks, certain species of plants and their characteristics.etc

It was possible to find groundwater deposits up to a depth of about 600 meters, based on the characteristics described in theVrhatamshita. It is a well-known fact that in areas with arid and semi-arid climates, the moisture and water hidden in the womb of the earth has more decisive effect on organisms and rocks than in other areas. This decisive effect of water causes certain chemical changes in the rocks and these changes are manifested on the earth in the form of various characteristics.

Understanding the nature of those symptoms and the scientific basis of the components that cause themand accurately predicting the presence of water or expressing their presence as formulas is an amazing achievement of Varahamihira.

The 54th chapter of the Vrhatsamhita describes the special indicators related to trees, fauna, land and rocks, and the method of digging the well, to find out the water under the ground.

It is noteworthy that natural indicators showing the presence of underground mineral deposits found in metals like copper, lead, zinc, gold etc. Many flowers and vegetation have indicators of mineral deposits under the earth.

These natural examples suggested that certain flora, rocks, and fauna play an indicator of the presence of the above mentioned veins of groundwater in origin, so it would be reasonable and reasonable to infer that Varamihir identified the natural indicators of underground water. And those indicators would have been used to predict underwater water.

There are few such trees in nature that give information about the presence of water in the ground below. The roots of trees called Prosopisspicigera, Acacia arabica and Salvedoraoleuvidis are capable of reaching water even under desert conditions. Similarly, berries and Terminaliaspicigera trees are commonly found in moist and low-lying areas of the valley.

Similarly, water is often found under sandy, grit and yellow, gray, soil types. There seems to be a connection between ecology (modern science) and Varahamihira's traditional science. Therefore, there is a need to develop an

understanding between the two sciences on a scientific basis. In short, according to AcharyaVarahamihira, underground water flows under the earth in the form of veins. According to the beliefs of modern ground hydrology, the movement of ground water from one place to another is due to the difference of pressure (difference of optimum) between the two places inside the rock, ie the underground slope of the water table.

Modern science suggests that except for sand of similar quality, the flow of water in all types of rocks is much less or less. It is possible that Varahamihira has given the name of veins to the excess flow of water inside the rock.

An attempt has been made to establish a connection between the information mentioned in our ancient Vedic period and modern scientific facts. In this way we can able to understand and resolve the problems related to ground hydrology and issues related to water quality.

There seems to be a connection between modern science and Varahamihira's traditional science. Therefore, there is a need to develop an understanding between the two on a scientific basis.

प्रस्तावना

जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। इसीलिये प्रकृति ने पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग को जलमय बनाया है। इतना ही नहीं स्वयं हमारे शरीर का 67 प्रतिशत भाग जल ही है। प्राणीमात्र के जीवन के मूलतत्व प्रोटोप्लाज्म में 90 प्रतिशत भाग जल का है।

भारत में जल संरक्षण का एक बेहतरीन इतिहास है। यहाँ जल संरक्षण की एक मूल्यवान पारंपरिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा है उदाहरण स्वरूप नदी खादिन तालाब जोहड़ कुँआ इत्यादि देश के अलग–अलग हिस्सों में इनमें से अलग–अलग तरीकों को अपनाया गया जो वहाँ के जलवायु के उपयुक्त है।

जल जीवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक वस्तु है लेकिन आज देश में उसके स्रोत घटते जा रहे हैं। आज देश की तात्कालिक जरूरत है सुरक्षित और ताजा जल–स्रोतों की। अच्छे स्वास्थ्य की सुरक्षा और उसे बनाए रखने के लिए पेयजल और स्वच्छता–सुविधाएँ मूल आवश्यकताएँ हैं। सभी लोगों के लिए जलापूर्ति और स्वच्छता उनके स्वास्थ्य और विकास–सम्बन्धी मुद्दों की दृष्टि से एक राष्ट्रीय चुनौती हैं।

भूजल की गुणवत्ता में निरन्तर गिरावट आ रही है। कारण है भूवैज्ञानिक और मानवीय कार्यकलाप। कहा जाता है कि देश की 14 लाख 23 हजार बस्तियों में कुल लगभग 15 प्रतिशत कु–प्रभावित हैं रासायनिक स्रोत की विभिन्न गुणवत्ता–सम्बन्धी समस्याओं से जैसे आरसेनिक की मात्रा की अधिकता फ्लोराइड नाइट्रेट और अन्य चीजों में खारापन।

वैदिक साहित्य में जल

ऋग्वेद (18.82.6) में उल्लेख है कि जल में सभी तत्वों का समावेश है। जल में सभी देवताओं का वास है। जल से पूरी सृष्टि सभी चर और अचर जगत पैदा हुआ है। यजुर्वेद (27.25) में कहा है कि सृष्टि का बीज सबसे पहले पानी ही में पड़ा था और उससे अग्नि पैदा हुई। ऋग्वेद की ऋचा (18.82.6) में प्राकृतिक जल चक्र का वर्णन है जिसके अनुसार सूर्य की गर्मी/ताप से पानी छोटे–छोटे कणों में बंट जाता है।

हवा के द्वारा ऊपर उठाया जाकर बादलों के रूप में बदलकर वह बारम्बार बरसात के रूप में धरती पर लौटता है। वेदों ने भी उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि की है जिसके अनुसार सूर्य एवं वायु मिलकर जल को भाप (वाष्प) में बदलकर मेघ बनाते हैं और (मेघ से) पानी बरसात के रूप में धरती पर लौटता है। यजुर्वेद की ऋचा (13.53) में कहा गया है कि पानी का आश्रय स्थल हवा है। हवा पानी को आकाश में इधर से उधर बहाकर ले जाती है। जल औषधियों में है। जल के कारण ही औषधियों की वृद्धि होती है। बादल का रूप ही जल का सार है। जल का प्रकश विद्युत है। जल से ही विद्युत की उत्पत्ति होती है। पृथ्वी जल का आश्रय है। जल का सूक्ष्य रूप ही प्राण है। मन जलीय तत्वों अर्थात विचारों का समुद्र है। वाणी की सरसता और जीवों में आर्द्रता का कारण भी जल ही है। आंखों की देखने की ताकत और उसकी सरसता का कारण भी जल है। जल कानों का सहवासी है। जल का निवास धरती पर है। अंतरिक्ष में जल व्याप्त है। समुद्र जल का आधार है तथा समुद्र से ही जल वाष्प बनकर वर्षा के रूप में धरती पर आता हैं उपर्युक्त सभी विवरण तत्कालीन समाज को पानी के बारे में वैज्ञानिक जानकारी देते प्रतीत होते हैं।

अथर्ववेद में कहा गया है कि जल औषधि है। जल रोगों को दूर करता है। जल सब बीमारियों का नाश करता है इसलिए यह तुम्हें भी सभी कठिन बीमारियों से दूर रखे। हे ईश्वर दिव्य गुणों वाला जल हमारे लिए सुखदायी हो अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति कराए हमारी प्यास बुझाए संपूर्ण बीमारियों का नाश करे रोग जनित भय से मुक्त करे तथा हमारी नजरों के सामने (सदा) प्रवाहमान रहे। यह विवरण तत्कालीन समाज को पानी के औषधीय गुणों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी देता प्रतीत होता है।

हमारे अपौरूषेय ग्रन्थ वेदों में जल के उपयोग सम्बन्धी वैज्ञानिक एवं तकनीकी स्तर पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है तथा चारों वेदों से अथर्ववेद में–शंनो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीयते अर्थात दिव्य जल हमें सुख दे। यह ईष्ट प्राप्ति के लिये तथा पीने के लिये हो। शंनः खनित्रिमाआपः खोदकर निकाला जल अर्थात भौम जल हमे सुख दे शिवा नः सन्तु वार्षिकी।

वृष्टि से प्राप्त जल हमारा कल्याण करने वाला हो। ऋग्वेद में जल चक्र हाइड्रोलॉजिकल साइकिल का संकेत मिलता है। इन्द्रोदीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयत्दिवि। विगोभिरद्रि मैरयत अर्थात प्रभु ने सूर्य उत्पन्न किया जिससे पूरा संसार प्रकाशमान हो। इसी प्रकार सूर्य के ताप से जल वाष्प बनकर ऊपर मेघों में परिवर्तित होकर फिर पृथ्वी पर वर्षा के रूप में आता है।

संसार में पंचतत्वों के अन्तर्गत जिन तत्वों का प्रदूषण हो रहा है उनमें से एक जल भी है। वेदों में जल के एक सौ एक नाम पर्यायवाची रूपों में गिनाए गए हैं जिससे इसकी महत्ता का ज्ञान होता है। ऋग्वेद में जल को माता कहा गया है जैसे माता सन्तान को नहला–धुलाकर शुद्ध और पवित्र कर देती है। वैसे ही ये जल प्राणियों को पवित्र करते हैं। इन जलों के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतः इन्हें अमृत कहा गया है–

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।

संसार के छह रस अर्थात मधुर अम्ल लवण कटु कषाय और तिक्त रसों का निर्माण इसी जल से विभिन्न रूपों में हुआ है। ये जल हमारे दोषों को दूर करते हैं तथा शरीर के मलों को नष्ट करते हैं। अथर्ववेद में नौ प्रकार के जलों का वर्णन है

परिचरा आपः– नगरों आदि के निकट प्राकृतिक झरनों से बहने वाला जल परिचरा आपः कहलाता है।
हेमवती आपः– हिमयुक्त पर्वतों से बहने वाला जल हेमवती आपः है।
उत्स्या आपः– स्रोत का जल उत्स्या आपः है।
सनिष्यदा आपः– तीव्र गति से बहने वाला जल सनिष्यदा है।
वर्ष्या आपः– वर्षा से उत्पन्न जल वर्ष्या है।
धन्वन्या आपः– मरुभूमि का जल धन्वन्या है।
अनूप्या आपः– अनूप देशज जल अर्थात जहाँ दलदल हो एवं वात–कफ के रोग अधिक होते हों, उस देश में प्राप्त होने वाला जल अनूप्या है।
कुम्भेभिरावृता आपः– घड़ों में रखा हुआ जल कुम्भेभिरावृता जल है।
अनभ्रयः आपः– फावड़े आदि से खोदकर निकाला गया जल अनभ्रयः आपः है।

वेदों में जल की महत्ता के अनेक मंत्र प्राप्त होते हैं जिनमें कहा है–जल निश्चय ही भेषज रूप है जल रोगों को दूर करने वाले हैं जल सब प्राणियों के भेषजभूत हैं। अतः जल से रोगों को भगाया जाये। जल को वैद्यों का भी वैद्य कहा गया है। जिस प्रकार माता शिशु का और बहनें अपने भाई का हित करती है उसी प्रकार ये जल सभी प्राणियों के हितैषी हैं। जहाँ ऋग्वेद का ऋषि जल को माताओं से भी सर्वोत्तम माता कहता है वहीं यजुर्वेद का ऋषि मातृ रूप जल की शुद्धि की कामना करता है। आपः शान्तिः कहकर वेद में इन जलों को शुद्ध करने की प्रेरणा दी गई है। ये हमें तभी शान्ति प्रदान करेंगे जब हम इन्हें शुद्ध रखेंगे। जल को प्रदूषित न करने का यजुर्वेद ने स्पष्ट आदेश दिया है।

वेदों के उपरान्त बनने वाले साहित्य में जल की महत्ता को देखते हुए कहा गया है कि नदी के स्रोतों के निकट मूत्र करने और शौच करने से करोड़ों जन्मों में भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। साथ ही लिखा है कि जो व्यक्ति नदियों में या जलाशय में थूकता है भोजन की झूठन आदि डालता है वह ब्रह्महत्या के पाप के कारण घोर नरक में जाता है। 7 वैदिक साहित्य में जलों को प्रदूषण से बचाने के लिये यह भी आदेश दिया गया था कि जल में मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

जल को प्रदूषण से मुक्त करने के जो प्रथम आदेश वेदों में दिये वे तो मुख्य हैं ही जल की शुद्धि के कुछ गौण उपाय भी वेदों में बताए गए हैं। जैसे कि यज्ञ करने से वर्षा की उत्पत्ति मानी गई है जिससे जल प्रवाहित होता है। उसमें गति आती है और वह शुद्ध हो जाता है। प्रवाहमान जल शुद्धता को प्राप्त होता है।वेदों में नदियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्हें माताओं में भी श्रेष्ठ माता कहकर पुकारा गया है। नदियों की पवित्रता के सम्बन्ध में वेद ने कहा है कि जो नदी पहाड़ों से निकलकर समुद्र से जा मिलती है वह पवित्र होती है। प्रकारान्तर से वेद यही कहना चाहता है कि नदी के प्रवाह को अबाध गति से बहने देना उपयुक्त है।

वेद में मित्र और वरुण शब्द आये हैं जो क्रमशः ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के वाचक हैं। ये दोनों वर्षा के प्रमुख तत्व हैं जिनके द्वारा जल का निर्माण होता है। यजुर्वेद में दोनों को वर्षाधायक माना है। अथर्ववेद में तो इन्हें वर्षा के स्वामी मानकर इनकी उपासना की गई है मित्र और वरुण वायुओं को मिलाने से जल की उत्पत्ति होती है। इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को दिखाने वाला मंत्र कहता है कि हे जल! तू मित्र और वरुण नामक वायुओं से पैदा हुआ है हे अन्नदाता जल! तू विद्युत् के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है जल के रूप में परिणत तुझको देवजनों के अन्न के लिये सूर्य की किरणें तुझे अन्तरिक्ष में धारण करती हैं।

वेदों में जल को शुद्ध करने के लिये वायु और सूर्य को महत्त्वपूर्ण माना है। अथर्ववेद में जल के कीटाणुओं को नष्ट करने की बात कही गई है और वहाँ कहा गया है कि कीटाणुओं को नष्ट करने का सामर्थ्य सूर्य की तीव्र किरणों में विद्यमान है।

जल के उपयोग

यह भलीभाँति ज्ञात है कि जल के अनेक उपयोग हैं। काफी अरसे से जल का उपयोग पीने एवं सिंचाई हेतु होता आ रहा है। यह भी प्रतिस्थापित है कि प्राचीन सभ्यता नदी घाटियों में विकसित हुई जहाँ जल भरपूर मात्रा में उपयोग हेतु उपलब्ध था। जलस्रोतों विशेषकर नदियों कूपों एवं स्रोतों के स्थल पर अनेक धार्मिक मेले भी होते आ रहे हैं। ऐसे अनेक स्रोतों कूपों के जल अपने चिकित्सकीय गुणों हेतु भी विख्यात हैं। इनमें पटना का राजगृह कुंड कांगड़ा जिला हिमाचल प्रदेश का मणिकरन कुण्ड उत्तराखण्ड़ के चमोली जिले का गोरीकुण्ड तथा वाराणसी का वृद्धताल है। ई.पू. की सिंधु घाटी सभ्यता के स्थलों की खुदाई में अनेक कूपकुंड तथा नहरें प्राप्त हुई हैं।

चौथी शती ई.पू. के महान वैयाकरण पाणिनी ने शकन्थु कूपों का वर्णन किया है जो मध्य एशिया के शक लोगों द्वारा उपयोग में लाया जाता था इन कूपों में जल स्तर तक उतरने हेतु सीढ़ियों की व्यवस्था की। बाद में इन कूपों का चलन बावड़ी रूप में हमारे देश में भी हुआ जिसमें जानवर एवं मनुष्य भी एक ढालुआँ रास्ते से अथवा इच्छानुसार सीढ़ियों द्वारा जलस्तर तक पहुँच सकते थे। यहाँ उल्लेखनीय होगा कि गुजरात में विशेषकर उत्तरी भाग में एक प्रकार की बावड़ी जिसे वाव कहते थे जो 70 मीटर तक गहरी और जलस्तर तक निर्मित सीढ़ियों से युक्त बनाई जाती थी। ये सीढ़ीदार कूप वातानुकूलित कक्षों का काम देते थे जिनके चारों ओर चौड़ी बारहदरी बनी होती थी। ये वाव 7 शती ईस्वी तक प्राचीन और सौराष्ट्र क्षेत्र में तक आधुनिक काल में भी बनाए जाते रहे।

भूजल की अवस्थिति

हमारे पूर्वज सतह के जल के साथ–साथ भूजल की भी खोज में पीछे न रहे। संस्कृत ग्रन्थों जैसे अथर्ववेद तैतरीय आरण्यक तथा वाराहमिहिर (छठी शती ईस्वी) की वृहत्संहिता में चीटी के ढूहे एवं भूजल स्तर में एक सीधा सम्बन्ध बतलाया गया है। इन विवरणों का एक ठोस वैज्ञानिक आधार है और दिलचस्प बात यह है कि आस्ट्रेलिया, रूस, अफ्रीका में हुए अनेक आधुनिक अन्वेषणों की कसौटी पर भी खरे उतरे हैं। वाराहमिहिर ने सतह पर अनेक वनस्पतियों एवं सब्जियों को भूजल को इंगित करने वाला यहाँ तक कि उसकी उपस्थिति की गहराई तक का विवरण दिया है और–तो–और जल दोहन हेतु वेधन की रीतियों का भी वर्णन वाराहमिहिर ने किया है तथा वेधन की बर्मी को धारदार बनाने की विधियों का भी वर्णन है। उनके बहुत पहले से ही हड़प्पा एवं महाभारत काल में भी अन्य रीतियों द्वारा भूजल प्राप्त करने के प्रमाण मिलते हैं। भीष्म की शर शैय्या के पास अर्जुन द्वारा बाण बेधन से जल की धारा फूट निकलने का कथ्य सर्वविदित है।

जल के स्रोत एवं गुणधर्मो का आकलन

अत्यन्त प्राचीनकाल मे भी भारतीयों को जल के विभिन्न स्रोतों का पता था। ऋग्वेद में जल को चार भिन्न–भिन्न भागों में बाँटा गया था। इसके अन्तर्गत 1. आकाश से प्राप्त होने वाला 2. नदियों एवं जलधाराओं में बहने वाला 3. खनन द्वारा प्राप्त 4. भूमि से रिसकर निकलने वाला भूजल। जाहिर है कि वे आकाशीय जल सतही जल कूपजल एवं स्रोत जल की ओर इंगित करते हैं। वैदिक शब्दकोष निघंटु में कूप को एक ऐसा जलस्रोत बताया गया है जिससे जल को श्रम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह संकेत कूप निर्माण हेतु खनन के श्रम की ओर है। भूजल के अन्य स्रोत के रूप में उत्साह तथा उत्स्त्रुत प्रकार के जल स्रोत होते हैं इसके साथ–साथ एक दर्जन अन्य प्रकार के कूपों का भी उल्लेख किया गया है।स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारतीयों को भूजल का ज्ञान था। विशेषकर इसका जलोढ़ मैदानों में उपस्थिति का भान था जिस कारणवश ऐसे स्थानों पर आवश्यकतानुसार विपुल मात्रा में कूप निर्माण होते थे। इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप अर्जुन द्वारा पृथ्वी को बाणों से भेदकर जल प्राप्त करने वाली घटना है। घटनास्थल कुरुक्षेत्र भी एक जलोढ़ मैदान ही है।

नदियों के तट पर बरसों से मेले और महोत्सव मनाए जा रहे हैं। इस अनुक्रम में कुंभ और सिंहस्थ जल के महापर्व हैं। वे भारतीय संस्कृति में सदियों से रचे बसे हैं और हिन्दुओं की अटूट आस्था के केन्द्र हैं।

भूमिगत जल की उपस्थिति तथा शिराओं के संकेतकों को समझने के लिये वराही संहिता या वृहत्संहिता के सूत्र 54. 6 एवं 54.7 का उदाहरण देना और उसके निहितार्थ को समझना उपयोगी होगा। इन सूत्रों में वेतस (बेत नामक वृक्ष) की मदद से भू–जल के मिलने के बारे में जानकारी दी गई है। दोनों सूत्र इस प्रकार हैः

यदि वेसतोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात
सर्घे पुरूषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र ।।6।।
चिन्हमपि चार्घुपुरुषे मण्डकः मण्डरोऽथ मृत् पीता
पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमघः ।।7।।

जलविहीन क्षेत्र में यदि बेंत का वृक्ष के पश्चिम में तीन हाथ (4.5 फीट या 53 इंच) दूर डेढ़ पुरुष (एक पुरुष बराबर पांच हाथ या 7.5 फीट) की गहराई पर पानी मिलेगा। इस निष्कर्ष का आधार पश्चिमी शिरा है जो जमीन के नीचे के पानी के मिलने वाले स्थान से बहती है।

अगले सूत्र में आगे कहा है कि पुरुष खुदाई करने पर हल्के पीले रंग का मेंडक मिलेगा उसके बाद पीले रंग की मिट्टी और उसके बाद सपाट परतों वाला पत्थर मिलेगा। इस सपाट परतदार पत्थर के नीचे पानी मिलेगा। इन दोनों सूत्रों (6 एवं 7) के अनुसार 11.25 फीट की गहराई पर पानी मिलेगा।

भूमिगत जल की उपस्थिति बताने एवं शिराओं के संकेतों को समझने के लिये वराही संहिता के एक और सूत्र 54.9 एवं 54.10 का उदाहरण लिया जा रहा है। इन दोनों सूत्रों में जामुन (जम्बू) के वृक्ष से जल के मिलने के बारे में जानकारी दी है। दोनों सूत्र और उनका भावार्थ इस प्रकार है:

जम्बू वृक्षस्रू प्राग्वल्मीको यदि भवेत समीपस्थ,
तत्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु।।9।।
अर्धपुरूषेच मत्स्य, पारावतसन्निभश्च पाषाण,
मृद्भवति चात्र नीला दीर्घकालं च बहु तोयम्।।10।।

जामुन के वृक्ष के पूर्व में यदि वृक्ष के पास वाल्मी (चीटियों कीड़ों अथवा सर्प द्वारा बनाया मिट्टी का स्तूप या बमीठी) हो तो जामुन के वृक्ष के दक्षिण में 4.5 फुट की दूरी पर 15 फुट गहरा खोदने पर स्वादिष्ट मीठा जल मिलता है।

भूमिगत जल के रंग और स्वाद के परिवर्तन के संकेतों को समझने के लिए वराही संहिता या वृहत्संहिता के सूत्र 2 का उदाहरण लेना और उसके निहितार्थ को समझना उपयोगी होगा।

एकेन वर्णेन रसेनचाम्भ्च्युतं नमस्तो वसुधाविशेषात् नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।।2।।

उपरोक्त सूत्र के अनुसार आकाश से बरसने वाला पानी एक ही रंग और स्वाद का होता है। धरती की विविधता एवं विशेषताओं के कारण वह अनेक स्वाद और रंग वाला हो जाता है। इस पानी के गुणों का परीक्षण कराना चाहिये।

कुछ स्थानों से धुंएं तथा भाप की मौजूदगी के संकेत मिलते हैं। इन संकेतों के आधार पर वराहमिहिर ने जमीन के पानी का अनुमान सूत्र 60 की सहायता से लगाया है। इसके जो जमीन गर्म लगती हो और उसमें से धुंआ या पानी की भाप निकलती दिखाई दे तो उस जमीन में दो पुरुष की गहराई पर तेज प्रवाह वाली शिरा बहती है।

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण।।60।।

वराहमिहिर ने भूमिगत जल की शिराओं और कतिपय प्राणियों वनस्पतियों एवं स्थानीय भूविज्ञान के बीच गहरे सम्बन्धों के सोच को शब्द प्रदान कर प्रतिपादित किया है। दूसरे शब्दों में वराहमिहिर की उपरोक्त साच (लेखक की मान्यता के अनुसार सिद्धान्त) का आधार धरती पर जीवन के प्राकृतिक चक्र का मूल सिद्धानत है। इस मूल सिद्धान्त के अनुसार धरती पर जीवन का आधार बीज मिट्ट और पानी है। धरती की कोख में बीज का जन्म तभी संभव होता है जब मिट्ट उसे जीवन प्रदान करने वाले तत्व देती है और पानी बीज को अंकुरित कर उसे वृक्ष बनाता है अर्थात् उसका लालन पालन करता है। वनस्पतियों के लिये पानी जीवन है और जीवन को उजागर करने वाले इन्ही मूल चिन्हों (वनस्पतियों मिट्टियों और पानी) का पानी की भविष्यवाणी करने में वराहमिहिर ने उपयोग किया हो।

दृकार्गल शब्द पर विचार करने के इस परिणाम पर आसानी से पहुँचा जा सकता है कि भारत में सबसे पहले यस्टिका अर्थात लकड़ी की छड़ी द्वारा ही भूमिगत जल की खोज (अनुसंधान) का अविष्कार हुआ होगा। प्रारंभ में इसी विधि से पानी की खोज की जाती होगी। कालान्तर में नई–नई खोजों की मदद से इस विद्या को परिष्कृत किया गया होगा। सारी खोजों और समय के बदलाव के बाद भी इसका नाम दृकार्गल है।

दृकार्गल विधि से पानी खोजने में केवल पांच किस्म के वृक्षों की ताजी टूटी हरी शाखाओं का उपयोग किया जाता है। ये पाँच वृक्ष सप्तपर्ण (Alstonia scholaris R. Br.) जामुन मेंहदी गुलर और खजूर हैं। जो जानकार इस विधि से पानी का पता बताने का काम करते हैं वे सामान्यतः स्नान करने एवं शुद्ध वस्त्र धारण करने के बाद अपने इष्ट देवता की पूजा अर्चना करते हैं। पूजा अर्चना करने के उपरांत वे पाँच वृक्षों में से किसी एक वृक्ष की अंग्रेजी अक्षर के आकार की ताजी टूटी हरी शाखा को दोनों हाथों की मुट्ठियों में पकड़ कर नंगे पैर भूमि पर धीरे–धीरे चलते हैं। जिस स्थान पर भूमिगत जल की शिरा प्रवाहित हो रही होती है उस स्थान पर पहुँचते ही हरी शाखा अपने आप घूमने लगती है या अपने आप ही पानी की शिरा की दिशा में झुक जाती है। जिस स्थान पर बहुत अधिक जल होता है, उस स्थान पर पहुंचते ही हरी शाखा बहुत तेजी से घूमने लगती है। कुछ प्रकरणों में हरी शाखा भूमि के निर्दिष्ट स्थान की ओर खिंचने लगती है तो कुछ जानकार लोगों को अपने शरीर में जल के करंट का अनुभव होता है।

वेद में जल की शुद्धि का एक उपाय यज्ञ भी है। भगवान कृष्ण ने द्रव्ययज्ञ तपोयज्ञ योगयज्ञ स्वाध्याययज्ञ ज्ञानयज्ञ का जहाँ वर्णन किया है वहाँ उनमें द्रव्ययज्ञ से अभिप्राय है कि जिसमें मंत्रोच्चारणपूर्वक शास्त्रोक्त सुगन्धित रोगनाशक, पवित्र प्राकृतिक पदार्थों का अग्नि में विधिपूर्वक समर्पण किया जाता है इसमें अग्नि को प्राप्त हुए पदार्थ अग्नि की विशिष्ट कार्य प्रक्रिया में दहन होने पर सूक्ष्म से सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते जाते हैं और गुणरूप होकर वायु को प्राप्त हो जाते हैं। किसी भी प्रकार की ऊष्मा को प्राप्त हुए पदार्थ का तैलीयादि तत्व शीघ्र ही वाष्पित प्रक्रिया से वायु को प्राप्त हो जाता है यह स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है। इससे वायु शुद्ध हो जाती है यह वायु जहाँ–जहाँ जाती है तब प्रथम स्तर पर आकाशस्थ जल वाष्प को एवं भूमिसतह पर विद्यमान जलस्रोतों जलमार्गों और जलाशयों को स्पर्श रूप से संयोग बनाती हुई शुद्ध करती जाती है। पुनः मेघ तथा अन्तरिक्ष को यह शुद्ध करती है। इस प्रकार द्रव्ययज्ञ से शुद्धि निरन्तर होती है। यजुर्वेद में लिखा है कि जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होते हैं वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणु रूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं। परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है वैसे दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती। इस प्रकार जल का प्रदूषण हम विभिन्न वैदिक उपायों से दूर कर सकते हैं।

निष्कर्ष

आज के बदलते परिवेश मे जब सतही जल के ज्यादातर श्रोत प्रदूषित हो गए हे वही भू जल की मात्र भी तेजी से घटती जा रही हैं। भू जल की उपस्थिती का सही आकलन एवं उसकी गुणवत्ता के बारे मे हमारे वैदिक साहित्य मे उपलब्ध जानकारी का उपयोग कर आने वाले समय के लिए स्वच्छ जल की उपलब्धता को सुनिचित किया जा सकता हैं।

References

- Rig Veda Samhita (3000 B.C.), (i) Bhasya by MaharshiDayanandaSaraswati (Hindi),
- Published by DayanandaSansthan, New Delhi-5.
- Atharva Veda (the latest Veda), Bhasya by Pt. Khem Karan Das Trivedi, Sarvadeshik
- AryaPratinidhiSabha, MaharshiDayanandaBhavan, RamlilaMaidan, New Delhi.
- VrhatSanhita (550 A.D.) by Varahamihira, Edited and Bhasya by Pt. AchyntanadaJha,
- Chow KhambaVidyabhawan, Varanasi=221 001 1988.
- Meghamala (around 900 A.D.), Manuscript No. 37202,
- Baker, B.N. and Horton, R.E. (1936). Historical Development of Ideas Regarding theOrigin
- of springs and Ground Water, Trans of American Geophysical Union, Vol. 17,pp. 395-400.
- Biswas, A.K. (1967). Hydrologic Engineering prior to 600 B.C. Jr. of the Hydraulic
- Division, ASCE, Vol. 93, Hy. 5, pp. 115-135.
- Biswas, A.K. (1969). Science in India, Firma K.L. Mukhopadhyaya, Calcutta, 154 p.
- Chow, V.T. (1964). Hand Book of Applied Hydrology Mcgrew-Hill Company, NewYork.
- Law, B.C. (1984). Historical Geography of Ancient India, MunshiamManoharlal, NewDelhi.